JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

महाकवि कालिदास की प्राकृतिक काव्यसम्पत्ति (मेघदूतम् के परिप्रेक्ष्य में)

—प्रज्ञा पाण्डेय
एम.ए. (द्वितीय सेमेस्टर), संस्कृत विभाग,
राजा श्रीकृष्णदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
जौनपुर (उत्तर प्रदेश) पिन कोड—222001

'मेघदूतम्' को महाकवि कालिदास की रचनाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संस्कृतसाहित्य के गीतिकाव्यों (Lyrics) में इस 'माधुर्यपूर्ण शृंगाररसभरित' रमणीय काव्य को जो सम्मान मिला है, वह अन्य काव्यों को उपलब्ध नहीं हो सका। साहित्यमर्मज्ञों ने इसे खण्डकाव्य की संज्ञा से सम्बोधित किया है। वस्तुतः यह काव्यकृति प्रेमार्द्र कातरहृदय की मधुर उद्वेजनाओं का मनोरम कोष है। यही कारण है कि मैकडॉनल आदि विद्वानों ने इसे 'गीतिकाव्य' (Lyric) की संज्ञा से सम्बोधित किया है। आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार इस काव्य में कुल 118 पद्य हैं। इस काव्य में छन्द की दृष्टि से विरहवर्णन के लिए अत्यन्त अनुकूल प्रवृत्ति वाला छन्द 'मन्दाक्रान्ता' छन्द प्रयुक्त है। इसकी उपजीव्यता का श्रेय ब्रह्मवैवर्तपुराण की योगिन्येकादशी—माहात्म्यकथा को प्राप्त है।

मेघदूतम् नामक इस काव्य का नायक **'हेममाली'** अलकापुरी का नागरिक यक्षविशेष धीरप्रशान्त तथा एक ही नायिका में आसक्त होने के कारण **'अनुकूल नायक'** है। यक्ष की पत्नी **'विशालाक्षी'** विनयशीलता, सरलताआदि गुणों से संयुक्त पतिव्रता **'स्वकीया नायिका'** है। प्रवासात्मक विप्रलम्भशृंगार ही इसका अंगी रस है। नायक—नायिका दोनों **'आलम्बन विभाव'** हैं। मेघप्रादुर्भाव आदि **'उद्दीपन विभाव'** हैं। ज्ञानशून्यत्व आदि **'अनुभाव'** हैं तथा ग्लानि इत्यादि **'व्यभिचारीभाव'** हैं।

इतिवृत्त की दृष्टि से अलकापुरी के अधीश्वर **'कुबेर'** ने अपने सेवक **'यक्ष'** को, कर्तव्यच्युति के कारण, एक वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया है। निर्वासन की अवधि को यक्ष दक्षिणभारत के **'रामगिरि'** नामक पर्वत पर व्यतीत करता है। आठ मास व्यतीत करने के बाद, वर्षा ऋतु के आगमन से उसके प्रेमप्रवण हृदय में अपनी प्राणप्रिया यक्षिणी की स्मृतियाँ सहसा उद्वेलित हो जाती हैं और वह **'मेघ'** को दूत बनाकर अपनी प्राणप्रिया के पास अपना प्रणयसंदेश देकर प्रेषित करता है।

यह काव्य **'पूर्वमेघ'** एवम् **'उत्तरमेघ'** की दृष्टि से खण्डों में विभक्त है। **पूर्वमेघ** में यक्ष ने रामगिरि से अलका तक के मार्ग का विस्तृत वर्णन किया है, इसके बाद **उत्तरमेघ** में अपनी प्रिया की विरहविह्वल दशा का वर्णन करते हुए, अपना मर्मस्पर्शी संदेश भेजा है। इस स्वल्प इतिवृत्त के आधार पर महाकवि ने अपनी प्रसाद एवं मधुर्य गुणों से युक्त वाणीको हृदयविदारक **'मन्दाक्रान्ता छन्द'** की रसधारा में प्रवाहित किया है, जिसमें सुधी साहित्य अजा भी गोता लगाते चले आ रहे हैं।

मेघ जैसे प्राकृतिक उपादानों को दौत्यकार्य में नियोजित करके, संदेशप्रेषण की उदात्त भावना का मौलिक श्रेय महाकवि कालिदास को प्राप्त है। डा. भीखनलाल आत्रेय ने 'योगावाशिष्ठ' के निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्ध में 119वें सर्ग में मेघदूतम् से संबन्धित वर्णन की ओर निर्देश करते हुए, कुछ पंक्तियों को उद्धृत किया है, जो 'मेघदूतम्' तथा 'योगावाशिष्ठ' दोनों में समान रूप से मिलती हैं। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने 'मेघदूतम्' की कल्पना को वाल्मीकीय रामायण की उस घटना पर आधारित बताया है, जिसमें श्रीराम 'सीता' के लिए हनुमान द्वारा संदेश भेजते हैं। डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने ऋग्वेद में दूतकाव्य के स्रोत का अन्वेषण किया है। यद्यपि डॉ. शास्त्री ने 'मेघदूतम्' की मौलिकता का प्रत्याख्यान किया है, तथापि कालिदास ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा जिस 'रससंसिक्त' एवं 'नवशब्दार्थसमन्वित' काव्य की सृष्टि की है, वह किसी भी सहृदय व्यक्ति को द्रवित कर देने वाली रचनाओं में मूर्धन्य स्थान रखता है।

महाकवि कालिदास का कान्ताविरही यक्ष इतना कृशकाय हो गया है कि उसकी कलाई से उसका कंगन भी ढीला होकर गिर पड़ा है। ऐसी स्थिति में अपने मस्तक की टक्कर से मिट्टी के टीले को ढहाने की क्रीड़ा में व्यस्त किसी हाथी के समान पर्वत की चोटी से लिपटे हुए 'मेघ' को आषाढ़ मास के पहले दिन उस यक्ष ने देखा। वह 'मेघ' कामकौतुक की अभिलाषा को उद्दीप्त करने वाला है तथा प्रिया की सुधि में ही लीन रहने के कारण वह यक्ष अपने कर्तव्य से स्खलित हो चुका है। यह उल्लेखनीय है कि अपनी प्राणप्रिया के साथ आस्वादित केलिक्रीडाओं की स्मृतियाँ, नवीनार्थगर्भित होकर, यक्ष को कातर बना रही हैं। अत एव वह 'यक्ष' बहुत देर तक उस 'मेघ' के सम्मुख अपने आँसुओं को रोके हुये खड़ा रहता है, लेकिन जब इन मेघों को देखकर, सुखी जनों की चित्तवृति भी विचलित हो जाती है, तो उन दुर्भाग्यदलितों की क्या दशा होगी, जो अपनी प्राणदयिता के आलिंगन के लिए तड़प रहे हैं।[1]

कृशकाय यक्ष को अपनी प्राणप्रिया पत्नी की चिन्ता यह सोचकर अहर्निश पीड़ित कर रही है कि उसके वियोग में उसकी प्राणप्रिया भी कठिनता से जीवन धारण कर रही होगी, क्योंकि **'प्रेम'** द्विपक्षीय व्यापार है। यदि प्रेमी को यह पता हो कि उसकी प्राणप्रिया भी उसके लिए तड़प रही होगी, तो उसका प्रेमज्वर निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

स्नेहकातर यक्ष पहले कुटजकुसुमों से 'मेघ' की अर्चना करता है तथा कुशलमंगल पूछकर उसका स्वागत करता है। इसके बाद उससे वह अपना सन्देश कहता है। यद्यपि भौतिकदृष्टि से 'मेघ' धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत् का समवाय है। अत एव उसे संदेशवाहन का कार्य नहीं सौपा जा सकता, तथापि अधीरता एवं उत्कण्ठा से अभिभूत होने के कारण, यक्ष को स्थिति के औचित्य अथवा अनौचित्य का ध्यान नहीं है और वह मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसका सन्देश उसकी प्रिया तक ले जाये, क्योंकि कामार्त्त व्यक्ति चेतन एवं अचेतन पदार्थों के समीप समानभाव से ही दीन बन जाते हैं।[2]

महाकवि कालिदास ने 'मेघ' को साधु, सौम्य, सुभग एवम् आयुष्मान् इत्यादि विशेषणों से सम्बोधित किया है, क्योंकि वह स्थूल और सूक्ष्म, दृश्य और अदृश्य, निरिन्द्रिय और सेन्द्रिय' सभी पदार्थों के साथ समान व्यवहार करता है। आचार्य मल्लिनाथ ने **'प्रकृतिपुरुषं कामरूपं'** का अर्थ **'इच्छानुसार रूपधारण में समर्थ प्रधानपुरुष'** किया है, लेकिन इस अर्थ से कवि का अभीष्ट स्पष्ट नहीं होता है। वस्तुतः मेघ 'काम' का रूप है। वह स्वयं काम है और समग्र प्रकृति का पुरुष है, जो 'श्रवणसुभग' गर्जना सुनाकर, उसमें नवीन प्रसव का विधान करता है। मेघ ही 'प्रकृति' के वन्ध्यात्वदोष को निराकृत करने की सामर्थ्य रखता है। इसी कारण, वह **'प्रकृतिपुरुष'** तथा **'कामरूप'** है। डॉ. अग्रवाल ने अत्यन्त निपुणता पूर्वक इन्द्र, मेघ तथा प्रजननशक्ति की एकरूपता का प्रदर्शन किया है। इन्द्र **'शतक्रतु'** है। यहाँ **'क्रतु'** का अर्थ शक्ति या वीर्य है। अत एव **'इन्द्र'** अगणित, अपरिमेय वीर्य अर्थात् प्रजननशक्ति का पर्याय है। वेदों में इन्द्र के 'वर्षण' कार्य का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। **'वृष'** शब्द से **'इन्द्र'** का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऋग्वेद में **'वृष'** तथा **'वृषभ'** शब्दों का लगभग तीन सौ बार **'इन्द्र'** के विशेषण के रूप में प्रयोग हुआ है। **'सोम'** के लिए किए गए सौ प्रयोगों में भी इन्द्र का साहचर्य है। जो पुरुषों में 'वृष' है, वही स्त्रियों में 'सोम' है। इसके अतिरिक्त दो सौ प्रयोगों में प्रायः रेतःसेचन तथा पुरुष के प्रजननकार्य का निर्देश किया गया है। शतपथ, ताण्ड्य एवं कौषीतकी ब्राह्मणों में इन्द्र को साक्षात् 'वृष' कहा गया है। जिस प्रकार नव मास तक तप कर 'मेघ' अपनी सुखद गर्जना से पृथ्वी में पहले शिलीन्ध्ररूप रोमांच उत्पन्न करता है, फिर वास्तविक वर्षण करके, उसे प्रसव के योग्य बनाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण क्रम पुरुष एवं स्त्री में भी वर्तमान है। अत एव, इन्द्र एवं मेघ दोनों कामशक्ति के प्रतीक हैं। इसीलिए, कामार्त्त यक्ष ने मेघ के इन्द्ररूप, प्रकृति–पुरुषरूप तथा कामरूप का स्मरण करके, अपनी प्रेमकातर दशा में उसे ही प्रणयसंवाद का वाहक बनाना निश्चित किया।

मेघ की संवेदनशीलता से यक्ष बहुत प्रभावित है, क्योंकि वह जानता है कि मेघ उसकी कामवेदना को सही ढंग से, उसकी सम्पूर्ण समझ सकता है। अत एव, वह संतप्तों के शरणरूप मेघ (पयोद) को यक्षों की सुविख्यात नगरी **'अलकापुरी'** में भेजता है, जहाँ के मनोरम हर्म्य भगवान् शिव के मस्तक से विच्छुरित होने वाली चन्द्रिका से धवलित होकर, शोभायमान लगते हैं। इसके बाद 'यक्ष' ने मार्ग में पड़ने वाली जिन छबियों का निर्देश किया है, उनमें चैतन्य–प्रस्फुरण के कारण अपरिमित सौन्दर्य का समावेश हो गया है।

अचेतन मेघ ने कामपुरुष वन कर प्रकृति के जिन–जिन पदार्थों और सत्त्वों का स्पर्श किया है, वे सब सुन्दर एवं दर्शनीय बन गए हैं। **'पूर्वमेघ'** प्रकृति के रमणीय चित्रों की ऐसी मनोभिराम शाला है, जिसमें सम्पूर्ण संसार, सचेतन एवं भावनाशील बनकर, प्रणयदूत 'मेघ' का अभिनन्दन करता है तथा अपने अंतरंग उल्लास को विविध प्रकार से अभिव्यक्त करता है।

कालिदास ने मेघप्रयाण के लिए जिस मार्ग का निर्देश किया है, वह स्नेह की शीतल छाया से ओत–प्रोत है। विरह–अवधि की गणना में संलग्न पतिव्रता 'भ्रातृजाया' को मेघ शीघ्रातिशीघ्र 'यक्ष' का संवाद सुना दे, यही उद्दिष्ट कार्य है, जिसके सम्पादनार्थ 'मेघ' को भेजा जा रहा है, क्योंकि अंगनाओं के कुसुमकोमल, प्रणयकातर हृदय को आशा का बन्धन ही टूटकर बिखर जाने से रोके रखता है।[3]

यक्ष की प्रधान प्रार्थना यह है कि 'मेघ' शीघ्रातिशीघ्र उसकी प्राणप्रिया के दर्शन करे, लेकिन वह जानता है कि मेघ 'प्रकृतिपुरुष' है, किसी एक विप्रयुक्ता कामिनी को आश्वस्त करना, उसके गौरव के अनुकूल नहीं होगा। अत एव, पशु–पक्षी, लता–वीरुध, नदी–पर्वत, जितने भी चराचर पदार्थ मार्ग में उसे मिलेंगे, वह उन सभी की तपन को बुझाएगा, सभी के हृदय में नवीन आह्लाद का संचार करेगा।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि यक्ष अपनी प्राणप्रिया की चिन्ता में स्वार्थपरायण नहीं बनना चाहता है। उसकी अपनी प्रेम–प्रवणतता की अनुभूति अन्यों की प्रेमवेदना की अनुभूति के लिए भी उसे सक्षम बनाती है, जिसके कारण वह 'मेघ' को केवल अपना ही संदेशवाहक नहीं बनाना चाहता, अपितु वह चाहता है कि जहाँ–जहाँ प्रेम की छाया ने संचार किया है, वहाँ–वहाँ वह अवश्य रुके और कहीं अपने **'नयनसुभग'** रूप को दिखाकर, कहीं **'श्रवणसुभग'** गर्जन को सुनाकर, सम्पूर्ण जंगम तथा स्थावर प्रकृति को उल्लसित एवं उद्वेलित कर दे। यक्ष ने आरम्भ में ही मेघ के साथ भाई का नाता जोड़ लिया है। अपनी पत्नी को उसकी 'भाभी' कह कर अभिहित किया है। भौजाई से प्रणयसंदेश सुनाने में भारतीय दृष्टि से कोई नैतिक आपत्ति नहीं है। अतः स्वभाव से तथा सम्बन्ध से, दोनों ही दृष्टिकोणों से, **'मेघ'** प्रणयदूत बनने के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

'प्रेममहिमा' की स्थापना 'मेघदूत' का मुख्य उद्देश्य है। प्रकृति के सम्पूर्ण साम्राज्य में, इस जानकारी से कि 'प्रणयदूत' मेघ एक महान् प्रेमव्रत रूपी अनुष्ठान को लेकर यात्रा कर रहा है। अतः सर्वत्र अनुकूलता, सहानुभूति तथा सेवा–साहाय्य की तत्परता व्याप्त हो गई है। अनुकूल पवन मन्दगति से सौम्य पयोद को आगे बढ़ा रहा है, गर्व से भरा पपीहा बायीं ओर आकर मधुरध्वनि कर रहा है, गर्भाधान का उत्सव मनाने वाली बलाकाएँ पंक्तिबद्ध होकर, उस मेघ की सेवा के लिए उद्यत हैं और प्रियसखा शैल उसके आलिंगन के लिए आतुर है। जो आँसू बहाते हुये, उसके प्रति अपना स्नेह प्रकट कर रहा है। मार्ग में जब कभी 'मेघ' थकान से खिन्न हो जाएगा, तब वह विभिन्न स्रोतों का जल पीता हुआ जाएगा। स्वस्थ होने के अनन्तर जब

वह आकाशमार्ग से आगे बढ़ेगा, तब चमचमाते हुये रत्नों की झिलमिल ज्योति के समान दिखाई पड़ने वाला 'इन्द्रधनुष' उसके श्याम शरीर को और भी नूतन कान्ति से उसी प्रकार सुशोभित कर देगा, जिस प्रकार झलकती हुई मयूरशिखा से मुरलीधर कृष्ण का गात्र सुशोभित होता था। वस्तुतः प्रणय के प्रसारकों को सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य का वरदान निरंतर मिलना ही चाहिए, जैसा कि 'मेघ' को ये विभूतियाँ बराबर मिलती गई हैं। उसके विश्राम के लिए यक्ष ने मार्गस्थ अनेक पड़ावों का निर्देश किया है, जहाँ वह नूतन शक्ति अर्जित करता हुआ, अपने सम्पर्क में आई हुई अन्य वस्तुओं को भी सौन्दर्य का दान देता हुआ, पके फलों की दीप्ति से दमकते हुये, वन्य रसालों द्वारा घिरे हुए, शैलशिखर की श्रीवृद्धि में अत्यन्त सहायक होगा। इस सम्बन्ध में महाकवि का कथन है कि पके हुये फलों से प्रदीप्त आम्रवृक्षों से घिरे हुये उस पर्वत की चोटी पर, जब तुम चिकनी वेणी की तरह काले रंग से घिर जाओगे, तब उसकी शोभा देव–दम्पतियों द्वारा देखी जाने योग्य ऐसी हो जायेगी, जैसे मध्यभाग में श्यामवर्ण 'पृथ्वी' का पीन पयोधर सुशोभित हो रहा हो।[4]

पर्वतराज हिमालय से नीचे उतरती हुई गंगा के स्फटिकमणिवत् निर्मल स्वच्छ जल में जब मेघ की छाया पड़ेगी, तब वह धारा ऐसी सुशोभित होगी, जैसे प्रयाग से अन्यत्र उसमें यमुना की जलधारा भी आकर मिल गयी हो। वहाँ आकर बैठने वाले कस्तूरी–मृगों की नाभियों से निकलने वाली गन्ध से सुरभित शिलाओं वाले उस हिमाच्छादित पर्वत के शिखर पर जब तुम थकावट मिटाने के लिए बैठोगे, तब उसकी शोभा ऐसी जान पड़ेगी मानो भगवान शिव के वाहन, गौरवर्ण 'नन्दी' ने सींगों पर गीली मिट्टी लगा ली हो। चिकने घुटे हुए अंजन के समान काले तुम कटे हुए हाथीदाँत के टुकड़े के समान, धवल कैलाश की ढाल पर जब आरूढ़ होवोगे, तब वह ऐसे शोभित होगा, जैसे गौरवर्ण बलराम के कन्धों पर चटकीला नीला वसन हो।

हे कामचारी मेघ! कैलाश की गोद में बैठी हुयी 'अलका' जिसकी गंगारूपी साड़ी खिसक गई है, ऐसी उस 'अलका' को प्रणयी कैलाश की गोंद में बैठी हुई देखकर तुम अवश्य उसे पहचान जाओंगे। वर्षाकाल में जब उसके ऊँचे महलों को घेरकर तुम जलधारा बरसाने लगोगे, तब वह ऐसी सुशोभित होगी, जैसे किसी कामिनी के सिर पर मोतियों की जाली से गुँथा हुआ केशपाश चमक रहा हो।[5]

महाकवि वैभव के वातावरण में विचरण करता था, इसलिए रमणियों के रम्यांगों तथा आभूषणों पर सदैव दृष्टिपात करते रहने के कारण, उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं के लिए, इन वस्तुओं की अप्रस्तुतरूप में उन्मुक्तभाव से नियोजना करता चलता था। महाकवि के अप्रस्तुत विभावों में अंजन, वेणी, उरोज, साड़ी, मुक्ताजाल इत्यादि का प्राचुर्य है, जो आज के साधारण पाठकों को भी चमत्कृत एवं आह्लादित कर देता है।

'मेघ' को मुख्यतः रसिक के रूप में चित्रित किया गया है। उसके विश्राम के लिये निर्दिष्ट स्थल वेत्रवती नदी, नीचैः पर्वत, उज्जयिनी की ऊँची अट्टालिकाएँ इत्यादि सभी विलासविभ्रम के सम्बन्धों से संयुक्त है। निर्विन्ध्या तथा गंभीरा नदियाँ तो मानो उसकी विशिष्ट प्रेयसियाँ अथवा नायिकाएँ हैं, जिनका रस वह रुककर आस्वादित करेगा।[6] उस 'मेघ' को सौदामिनी रूपी प्रियतमा का संयोग भी प्राप्त है[7] साथ ही साथ पौरांगनाएँ, वारवनिताएँ तथा देवयुवतियाँ सभी उसका स्वागत करेंगी, क्योंकि वह उनके नेत्रों का कौतूहल है और उनकी चंचल दृष्टिपात का सुख लूटेगा,[8] किम्बहुना चर्मण्वती नदी के पृथुलप्रवाह में प्रतिविम्बित मेघ को, पृथ्वी के वक्ष पर झूलते हुए मोतियों के हार के बीच में अनुस्यूत इन्द्रनीलमणि के मोटे मनके से उपमा दी गयी है।[9]

पूर्वमेघ में 'मेघ' को मार्ग का निर्देश करता हुआ 'यक्ष' कहता है कि हे मेघ! कृषि का फल तुम्हारे अधीन है, यह जानकर नई उमंग से भरी हुई, भ्रूविलास से अनभिज्ञ जनपदीय बालाएँ अपने प्रीतिस्निग्ध नयनों से तुम्हारे रूप का रसपान करेंगी। तुम मालक्षेत्र के ऊपर इस प्रकार जल बरसाना कि हल के फाल से तत्काल कर्षित भूमि गन्धवती हो उठे, फिर थोड़ी देर के बाद क्षिप्रगति से उत्तर की ओर बढ़ जाना।[10]

इस प्रकार 'पूर्वमेघ' में **'ब्रह्मचारी'** पयोद[11] को रामगिरि से, भगवान शिव के पुंजीभूत अट्टहास एवम् देव–वनिताओं के लिए स्वच्छ दर्पण के समान 'कैलास' की गोंद में बसी हुई 'अलका' तक पहुँचाया गया है, जब कि 'उत्तरमेघ' में अलका के सुख–विलास, यक्षिणी के वियोगव्यथित रूपसौन्दर्य तथा अन्ततः यक्ष के प्रणयसन्देश का अत्यन्त ललित एवं मर्मभेदी वर्णन किया गया है।

'उत्तरमेघ' में प्रथम पद्य में महाकवि कालिदास ने **'कामरूप मेघ'** को 'अलका' के प्रासादों की प्रतिस्पर्धा में खड़ा कर दिया है। यक्ष 'मेघ' से कहता है कि अलका के महल अपने विशिष्ट गुणों से तुम्हारी प्रतियोगिता करेंगे। तुम्हारे पास यदि 'बिजली' है, तो उनमें मोहिनी वनिताएँ हैं। तुम्हारे पास 'इन्द्रधनुष' है, तो उनमें सुरम्य चित्र अंकित हैं। तुम्हारे पास 'मधुर गम्भीर गर्जन' है, तो उनमें संगीत के मृदंग ठनकते रहते हैं। तुम्हारे भीतर 'जल' भरा हुआ है, तो उनमें मणियों से निर्मित चमकीले भूमिखण्ड हैं। यदि तुम आकाश में उन्नत हो, तो वे भी गगनचुम्बी हैं।[12]

ग्रन्थारम्भ में यक्ष ने 'मेघ' के श्रेष्ठकुल का कथन करके बाद उसकी रसिकता, परोपकारिता एवं परदुःख–संवेद्यता की बड़ाई करके, उसे दौत्यकर्म हेतु तैयार कने का उपक्रम किया है, तदुपरान्त अब अपने ऐश्वर्यपूर्ण सम्बन्धों की विज्ञप्ति करके, वह एक प्रकार का मनौवैज्ञानिक सम्मान संकेतित कर रहा है कि मेघ को उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिए। इस प्रकार महाकवि ने विप्रयुक्त अन्तस् की जो तलस्पर्शी विवेचना की है, वह उसकी सहृदय–संवेद्यता को आलोकित करती है कि 'मेघ' उज्जैन की कृष्णाभिसारिकाओं के तिमिराच्छन्न पथ को कसौटी पर कसी कंचनरेखा की तरह चमकती हुई बिजली से प्रकाशित करेगा।[13]

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि प्रणयकातर यक्ष ने 'मेघ' से यह अनुरोध किया है कि प्रणयाभिसार करने वाली कामिनियों का पथ आलोकित करके, वह उनके प्रियसमागम में सहायता पहुँचावे। वस्तुतः प्रेमार्द्र मानस में करुणा एवं सहानुभूति के अतिरिक्त अन्य तत्त्व प्रविष्ट ही नहीं सकते। इसी क्रम में महाकवि ने उज्जयिनी को स्वर्ग का 'कान्तिमान खण्ड' बतलाया है, लेकिन 'अलका' के गौरव एवम् ऐश्वर्य के सम्मुख वह निश्चितरूप से हतप्रभ हो जाएगी। स्फटिकनिर्मित 'हर्म्य' उनमें विलास

करने वाली वनिताएँ तथा उनकी अक्षय निधियाँ, इन सबका वर्णन करके महाकवि कालिदास ने प्रकारान्तर से यह स्पष्ट कर दिया है कि अलका के निवासी यक्षों को 'अर्थ' नामक पुरुषार्थ के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है। अतः वे अपने 'कामप्रधान जीवन' का आस्वाद लेने के लिए पूर्णतः स्वतन्त्र रहते हैं।[14]

ध्यातव्य विषय है कि यक्ष का प्रणयसंदेश किसी परकीया प्रेयसी के लिये नहीं, अपितु अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी के लिए, प्रेषित किया गया है। यक्ष को पूर्ण विश्वास है कि उसका भव्य भवन उसके वियोग में श्रीहीन हो गया होगा, क्योंकि सूर्य के अभाव में कमल श्रीहीन हो जाता है। अतः वह जानता है कि छरहरी देह वाली, उसकी नवयौवना प्रिया, नन्हें–नन्हें दाँतों वाली, पके हुये बिम्बाफल के समान लाल अधरों वाली, क्षीण कटि वाली, चकित हरिणी की लोल चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार से अलसाई गति वाली, स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई–सी, जो अलका की युवतियों में विधाता की पहली सृष्टि है,[15] वह मेरी प्राणप्यारी वियोग की गाढ़ी उत्कण्ठा के कारण कुछ ऐसी विवर्ण बन गई होगी, जैसे पाले की मारी कमलिनी अन्य प्रकार की द्युति वाली बन जाती है।[16]

विरहकातर यक्ष अपनी विरहविधुरा पत्नी की मानसिक एवं शारीरकि दशा की कल्पना करता हुआ, मेघ से कहता है कि विरह के पहले दिन मैंने अपनी जिस प्राणप्रिया की वेणी को जल्दी में बाँधा था, शापान्त में उसे मैं ही खोलूँगा। उस खुरदरी वेणी को छूने से भी उसे पीड़ा होती होगी तथा बढ़े हुए नखों वाले हाथों से वह अपने कोमल कपोलों से उसे बारम्बार हटाती होगी। उस अबला ने आभूषणों का परित्याग कर दिया होगा और शय्या पर किसी प्रकार अपना सुकुमार शरीर रखती होगी। उसे देखकर, तुम्हारे नेत्रों से अवश्य आँसू की धाराएँ फूट पड़ेंगी, क्योंकि आर्द्रात्मा व्यक्तियों की चित्तवृत्ति प्रायः करुणा से भरी होती है। किम्बहुना मुँह पर लटकने वाले केश–पुष्प जिसकी तिरछी चितवन को रोकते हैं, काजल की चिकनाई के बिना जो सूना है तथा वियोग में मधुपान छोड़ने के कारण जिसकी भौंहे अपनी चपलता भूल चुकी हैं, ऐसा उस मृगाक्षी का वामनेत्र तुम्हारे पहुँचने पर ऊपर की ओर फड़कता हुआ ऐसा प्रतीत होगा, जैसे सरोवर में मछली के फड़–फड़ाने से खिलता हुआ नीलकमल सुशोभित होता है।[17]

कालिदास के 'यक्ष' ने वैसे तो रात्रिकाल में ही अपना संदेश सुनाने की सलाह दी है, लेकिन यदि वह विरहिणी निद्रामग्न हो, तो यक्ष का 'मेघ' से अनुरोध है कि वह उसे जगाने की चेष्टा न करे। अत एव वह सुस्पष्ट शब्दों में कहता है कि हे मेघ! यदि उस समय मेरी प्रिया नींद का सुख ले रही हो, तो अपनी गर्जना बन्द करके एक प्रहर तक उसके जागने की प्रतीक्षा करना। ऐसा न हो कि कठिनाई से स्वप्न में मिले हुये प्रियतम के साथ गाढ़े आलिंगन के लिये कण्ठ में डाला हुआ, उसका भुजपाश अचानक खुल जाय।[18] यक्ष की इस प्रार्थना में प्रणयी अन्तस् की कोमलता, प्रिय को सुखपांप्ति की अगाध लालसा तथा प्रिय के प्ररूढ़ स्नेह की सच्चाई के प्रति उसका अगाध विश्वास अत्यन्त तलस्पर्शी ढंग से अभिव्यंजित हुआ है। यक्ष पूर्वास्वादित सुखों की स्मृतियों के उद्वेलन से अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। मुक्ताजाल से उसके केशों का अलंकरण, अंगों का संस्पर्शन, इत्यादि संयोगकालीन विनोदों की स्मृतियों ने यक्ष को उत्कण्ठा से भर दिया है। अत एव वह अपनी प्राणप्यारी की प्रतिकृति की खोज कर रहा है, जिसके सन्निकर्ष से उसके वियोग का ताप कुछ कम हो सके।

अतः 'यक्ष' प्रकृति के राज्य में अपनी दयिता के रूप–सौन्दर्य का अनुसन्धान करता हुआ, कहता है कि हे प्रिये! प्रियंगुलता में तुम्हारे कोमल अंग को, चकित हरिणी के नेत्रों में तुम्हारे कटाक्ष को, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की कान्ति को, मोरपंखों में तुम्हारे केशों को तथा नदी की कुटिल तरंगों में मैं तुम्हारे भ्रूविलास को देख पाता हूँ, लेकिन हे मानिनी! कहीं भी एक स्थान पर, तुम्हारी जैसी छवि के दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ।

यक्ष की अधीरता को बढ़ाने वाला प्रमुख कारण यह है कि कहीं भी उसे ऐसी वस्तु नहीं दिखाई पड़ रही है, जिसमें वह प्रिया के सम्पूर्ण सौन्दर्य को देखकर, अपने विरही मन को कुछ सान्त्वना दे सके। वस्तुतः सादृश्य में मनबहलाव करना एक प्रकार प्रकार की आत्मवंचना ही है, लेकिन प्रणयिजनों को इस वंचना में भी रसानुभूति होती है और वे इसी बहाने जीवन के भार को ढोने में समर्थ हो पाते हैं। यक्ष की प्रिया तो विधि की प्राथमिक सृष्टि है, जिसमें उसने अपना समग्र कौशल लगा दिया होगा। अत एव बाद में रचे गये जगती के अन्य पदार्थों में उसके रूप के विभिन्न आकर्षणों का अलग–अलग कुछ आभास तो मिल सकता है, किन्तु उन सबका समवाय निश्चित ही दुर्लभ है।[19] अर्थात् जब यक्ष बाह्यवस्तुओं में यह अभीप्सित सादृश्य नहीं देख पाता है, तव वह शिलाओं पर गेरू से अपनी प्राणप्यारी का प्रणयकुपित चित्र बनाने लगता है, किन्तु उस समय उसकी आँखों में आँसू छा जाते है और क्रूर दैव वह मिलन भी सम्पन्न नहीं होने देता। स्वप्न में यदि वह कभी मिल जाती है, तो वह उसे भुजाओं में भर लेने के लिए आकाश में बाँहें फैलाता है, जिसे देख कर वनदेवियाँ रोने लगती हैं। उसका सन्ताप इतना बढ़ गया है कि वह हिमगिरि से आने वाले शीतल पवन को यह सोचकर छाती से लगा लेता है कि कदाचित् वह पहले प्यारी के अंगों का स्पर्श कर चुका हो। इस प्रकार विविध कल्पनाओं में लीन 'यक्ष' किसी तरह प्राणधारण कर रहा है और अपनी प्रिया के लिए भी धैर्य धारण करने का सन्देश देता है कि हे कल्याणि! तुम भी धैर्य खोकर सर्वथा कातर मत बनो। कौन ऐसा है जिसके भाग्य में सदैव सुख या सदैव दुःख ही लिखा हो? मनुष्य का भाग्य रथ के पहिये की नेमि के समान बारी–बारी से नीचे–ऊपर आता–जाता रहता है।[20] इस कथन में प्रणयकातर हृदय की विवशता सुस्पष्ट रूप से मुखर हो रही है।

अन्ततः यक्ष का संदेश वस्तुतः प्रेमराशि के संचय का सन्देश है, परिस्थिति की अवमानना कर स्नेहदीप के निरन्तर प्रज्ज्वलित रखने का उद्बोधन है। वह अपनी प्राणप्रिया को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि वियोग में उसके प्रति उसका प्रेम घटा नहीं है, अपितु उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार यक्ष ने स्वयं विविध प्रकार से अपनी प्रिया को प्रबोध दिया है, लेकिन उसका जीवन भी प्रातःकालीन कुन्दकुसुम की तरह शिथिल बन गया है और उसे ऐसा लगता है ि कवह अपनी प्राणप्रिया से प्राप्त कुशल सन्देश से ही वह जीवित रह पाएगा।[21]

'मेघदूतम्' पर अब तक सैकड़ों टीकायें लिखी जा चुकी हैं। विदेशी विद्वानों ने भी इसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा की है। प्रो. विलसन ने इसकी 'सरल किन्तु, साथ ही, अत्यन्त सुष्ठु एवं परिमार्जित' शैली की प्रशंसा की है। मैकडॉनल मेघदूतम् में उपलब्ध भावों की गहराई तथा प्रकृति के रमणीय चित्रों के प्रशंसक है। इस प्रकार **'मेघदूतम्'** महाकवि कालिदास की वाणी का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद है।

सन्दर्भ (REFERENCE)

1. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः।
   कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पूनर्दूरसंस्थे।। मेघदूतम्।। 01.03।।
2. धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः,
   संदेशार्थाः क्क पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
   इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे,
   कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। मेघदूतम्।। 01.05।।
3. आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां।
   सद्यःपाति प्रणयिह्रदयं विप्रयोगे रुणद्धि।। मेघदूतम्।। 01.10।।
4. छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः,
   त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
   नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्,
   मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।। मेघदूतम्।। 01.18।।
5. तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूला,
   न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
   या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
   मुक्ताजाल–ग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।। मेघदूतम्।। 01.67।।
6. निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यान्तरः सन्निपत्य।
   स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रामो हि प्रियेषु।। मेघदूतम्।। 01.30।।
   प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि।
   ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।। मेघदूतम्।। 01.45।।
7. तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां।
   नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।। मेघदूतम्।। 01.42।।
8. मेघदूतम्।। 01.39।। 1.51।। 1.65।।
9. मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।। मेघदूतम्।। 01.50।।
10. त्वय्यात्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
    प्रीतिस्निग्धैर्जनपद–वधूलोचनैः पीयमानः।
    सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं,
    किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।। मेघदूतम्।। 01.16।।
11. 'ब्रह्म' नाम उदक अर्थात् जल का है। उसके साथ विचरण करने वाला मेघ 'ब्रह्मचारी' है। इसीलिए वह नित्ययुवा है। ऋग्वेद में उषा को भी 'अमर्त्या–पुराणी युवती' कहा गया है।
12. विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
    संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर घोषम्।
    अन्तस्तोयं मणिमय–भुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः,
    प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः।। मेघदूतम्।। 02.01।।
13. गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं,
    रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
    सौदामन्या कनकनिकषस्निग्ध्या दर्शयोर्वीः,
    तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः।। मेघदूतम्।। 01.41।।
14. मंदाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भिः,
    मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
    अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः,
    संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः।। मेघदूतम्।। 02.06।।
15. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
    मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
    श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
    या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।। मेघदूतम्।। 02.22।।
16. तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं,

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषुदिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां,
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।। मेघदूतम्।। 02.23।।

17. मेघदूतम्।। 02.29–37।।
18. तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्याद्,
अन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्,
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।। मेघदूतम्।। 02.39।।
19. हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।। मेघदूतम्।। 02.46।।
20. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे,
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रकेनेमिक्रमेणा।। मेघदूतम्।। 02.52।।
21. साभिज्ञान–प्रहित–कुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि ।
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः।। मेघदूतम्।। 02.56।।

(प्रज्ञा पाण्डेय)